प्रवचन नं. ५३ कलश-५ दिनाङ्क ०९-०८-१९७८ बुधवार
श्रावण शुक्ला ५, वीर निर्वाण संवत् २५०४

समयसार, चौथा कलश चला गया है। अन्तिम दो लाइन थी। **अब, आचार्य शुद्धनय को प्रधान करके निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं।** अर्थात् क्या कहा? कि पहले यह कहा था कि ज्ञानस्वरूप आत्मा अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा...ऐसा भेद समझाया था, परन्तु वह भेद कोई चीज नहीं है। ज्ञानस्वरूप आत्मा को समझाने के लिए (कहा) कि यह ज्ञान, वह आत्मा — ऐसा भेद करके समझाया था, वह व्यवहार है। व्यवहार आता अवश्य है बीच में, परन्तु वह आदरणीय नहीं है — ऐसा कहते हैं। समझ में आया कुछ? यह आत्मा चैतन्यस्वरूप, ऐसा जो चैतन्यस्वरूप, वह ज्ञानस्वरूप-ऐसा जो गुण-गुणी का भेद करके बात करना, उसका कथन जो आता है, वह पहले व्यवहार में हस्तावलंबरूप आता है, परन्तु वह आदरणीय नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। **आचार्य शुद्धनय को प्रधान करके निश्चय समयकत्व का स्वरूप कहते हैं।** अर्थात् जो त्रिकाली वस्तु है, अनन्त गुण का पिण्ड-वह निश्चयसम्यक्त्व का विषय है। जो ध्रुवस्वरूप, चिदानन्द भगवत् ज्ञायकस्वभाव, वही सम्यग्दर्शन का विषय है।

निश्चय सम्यग्दर्शन उसके-द्रव्य के लक्ष्य से होता है। सच्चा सम्यक्त्व, सत्य दर्शन, चौथा गुणस्थान... आहाहा!...वह त्रिकाली ज्ञायक भगवत् स्वरूप के आश्रय से होता है। इसलिए यहाँ निश्चयनय को मुख्य करके सम्यक्त्व की व्याख्या की है। आहाहा!

अशुद्धनय की (व्यवहारनय की) प्रधानता में जीवादि तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है। भेद करके बात की थी, वह व्यवहार भी वह वास्तविक है नहीं। आहाहा! **जबकि यहाँ उन जीवादि तत्त्वों को शुद्धनय के द्वारा जानने से सम्यक्त्व होता है, यह कहते हैं।** सूक्ष्म विषय है। आहाहा! नौ के भेद करके कथन नौ का (किया) परन्तु (है) एक का कथन — वह वस्तु है अभेद, उसमें यह ज्ञान, वह आत्मा-ऐसा जो भेद करना, वही एक निमित्त और व्यवहार (है, उसे) हस्तावलम्ब कहा जाता है, परन्तु वह अनुसरण करने योग्य नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। वह व्यवहार की मुख्यता में कहा था। **जबकि यहाँ उन जीवादि तत्त्वों को शुद्धनय के द्वारा जानने से सम्यक्त्व होता है, वह कहते हैं।** आहाहा! **टीकाकार इसकी सूचनारूप तीन श्लोक कहते हैं, उनमें से प्रथम श्लोक में यह कहते हैं कि व्यवहार को कथंचित् प्रयोजनवान कहा....** जानने के लिए कहा था, परन्तु आदर करने के लिए बिलकुल प्रयोजनवान नहीं। आहाहा! **कुछ वस्तुभूत नहीं है।** ऐसा कहते हैं।

व्यवहारणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां हंत हस्तावलंबः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं परविरहितमंतः पश्यतां नैष किंचित्॥ ५॥

वहाँ अपने ११वीं गाथा में आया था — जिनवचन में व्यवहार को — भेद को हस्तावलम्ब जानकर बहुत कहा है। धन्नालालजी! क्या कहा? व्यवहार को हस्तावलम्ब जानकर जिनवाणी में बहुत कहा है, परन्तु उसका फल संसार है। यह हस्तावलम्ब... आहाहा! पण्डित जयचन्द (जी के भावार्थ) में आ गया है, ११वीं गाथा के भावार्थ में... कि भेद का पक्ष तो जगत को अनादि का है और भेद के पक्ष की बातें परस्पर किया करते हैं, और जिनवाणी में भी भेद के पक्ष को हस्तावलम्ब जानकर बहुत कहा है, परन्तु तीनों का फल संसार है। यह गजब बात है।

श्रोता : भगवान ने कहा है और उसका फल संसार?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने कहा है, वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। उसके बदले निमित्त से लाभ होगा? निमित्त तो राग है, वह तो राग है-गुण-गुणी का भेद है, वह राग है। आहाहा! वह ज्ञान कराया, परन्तु वह आदरणीय नहीं है। आहाहा!

क्योंकि निश्चय के द्रव्यस्वभाव ऐसा है, भगवान आत्मा का गुण-स्वभाव ऐसा है कि विकाररूप परिणमन रहित होना, वह उसका गुण है। क्या कहा? विकाररूप जो परिणमता है, षटकारकरूप से विकृत अवस्था, उससे रहितपने होना, वह उसका 'भाव' नामक गुण है। 'भाव' नाम का एक गुण है। विकृतपने के परिणमन से रहित होना, वह उसका गुण है; विकृतपने से सहित होना — ऐसा उसका कोई गुण नहीं है। आहाहा! (आत्मा में) अनन्त गुण है परन्तु उनमें ऐसा कोई गुण नहीं है कि विकारपने गुण हो — ऐसा कोई गुण नहीं है। आहा...हा...! अर्थात् उसमें एक गुण ऐसा है कि षटकारकरूप परिणति जो विकृत अवस्था, व्यवहार की-राग की होती है; जिसे हस्तावलम्ब कहते हैं — आहाहा! उससे रहितपने परिणमन (हो) — ऐसा उसका वह गुण है। उस व्यवहार से होवे-ऐसा तो गुण उसमें नहीं है, क्योंकि अनन्त गुण निर्मलपने परिणमित हों — ऐसा गुण है। कोई गुण विकारपने परिणमें — ऐसा कोई गुण आत्मा में-अनन्त में है ही नहीं। समझ में आया? यह बात बहुत सूक्ष्म है, बापू! अभी तो इतना फेरफार हो गया है... आहा! व्यवहार के रागरूप परिणमन (होवे) — ऐसा जीव का कोई गुण नहीं है। जीव का गुण तो, भगवान आत्मा का गुण, उस गुण का गुण... विकाररहित परिणमन होना, वह गुण का गुण है। धन्नालालजी!

श्रोता : गुण का गुण?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस गुण का कार्य। गुण का गुण (अर्थात्) गुण का कार्य। आहाहा! ऐसी चीज है, भाई!

भगवान आत्मा, राग के-व्यवहाररत्नत्रय के राग से परिणमन रहित — ऐसा उसका गुण है क्योंकि विकृतरूप से-व्यवहार, दया, दान आदिरूप से परिणमना ऐसा कोई गुण, अनन्त गुण में एक भी गुण नहीं है; परन्तु उससे रहित परिणमना-ऐसा एक गुण है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! समझ में आया? इसलिए यहाँ कहते हैं-टीकाकार उसकी बात करते हैं। व्यवहारनय अब,

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हंत हस्तावलंबः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमंतः पश्यतां नैष किंचित्॥ ५॥

न ऐसकिंचित, न ऐसकिंचित... आहाहा!

अब इसका श्लोकार्थ... '**व्यवहारनय**' वह कलश टीकाकार ने तो इसका अर्थ ऐसा किया है, व्यवहारनय का तो कथनमात्र! व्यवहारनय अर्थात् कथन मात्र! वस्तु नहीं। भाई! कलश टीकाकार है न, यह पाँचवाँ, पाँचवाँ श्लोक है, बहुत बार कहा जा चुका है, यह तो; सुननेवाले अलग-अलग होते हैं न! व्यवहारनय... जितना कथनमात्र, कथनमात्र! वस्तु नहीं; कथन... क्योंकि राग चाहे तो देव-गुरु की श्रद्धा का राग या पञ्च महाव्रत का राग या शास्त्र की ओर का-परद्रव्य की ओर के झुकाववाला पढ़ने का (या) जानने का राग, उसरूप होना — ऐसा जीव में कोई गुण नहीं है। आहाहा! उसरूप न होना — ऐसा जीव का गुण है। समझ में आया इसमें? यह तो लोग कहते हैं न कि व्यवहार से निश्चय होता है, परन्तु उस वस्तु में व्यवहार है ही नहीं, उससे निश्चय हो कहाँ से आया? व्यवहार का परिणमन ही निश्चय का कोई गुण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह भगवान तो, जो विकार के विकल्प-व्यवहाररत्नत्रय का शुभराग, जिसे जिनवाणी में हस्तावलम्ब कहा, वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! और बन्ध के कारणरूप होना — ऐसा किसी जीव में, अनन्त...अनन्त...अनन्त...अनन्त...अनन्त गुण हैं... अनन्त... अनन्त... अनन्त...अनन्त... जिनकी संख्या की हद नहीं है। जैसे आकाश के क्षेत्र को कहीं हद नहीं है, कहाँ हो रहा आकाश? वैसे ही अनन्त गुणों की हद नहीं है कि यह गुण, अब यह-यह यह अन्तिम। अनन्त...अनन्त...अनन्त...अनन्त...अनन्त...अनन्त... में अन्तिम (गुण कौनसा?) ऐसी कोई हद नहीं है। आहाहा! आकाश का अन्त कहाँ? क्या है यह? अनन्तगुना अनन्त योजन, अनन्त योजन अनन्त को अनन्त से गुण करो कि अब आकाश हो गया-ऐसा है? आहाहा! जिसके क्षेत्र का भी अन्त नहीं है — ऐसा जिस क्षेत्र को 'ज्ञ' क्षेत्र जाननेवाला भगवान क्षेत्र 'ज्ञ' है यह तो। उसके गुण की संख्या की कोई हद नहीं है

कि अनन्त...अनन्त...अनन्त...अनन्त में यह...यह..यह...अनन्त में...अनन्त में....अनन्त में...अनन्त में अन्तिम यह आया! आहाहा! ऐसी जो अनन्त गुण की राशि प्रभु, जो सम्यग्दर्शन का विषय (है।) आहाहा! क्योंकि वह सत्य इतना और ऐसा है। उसे उसरूप से ज्ञान करके प्रतीति में लेना, उसे सत्य दर्शन (अर्थात्) जैसा सत्य है, वैसा दर्शन हुआ। समझ में आया? आहाहा! वह यहाँ कहते हैं — व्यवहार पहले कहा गया, **यद्यपि पहली पदवी में (जब तक) स्वरूप की प्राप्ति नहीं हुई हो तब तक** उसे गुण का भेद का विकल्प उसे समझाना पड़ता (है।) आहाहा! कि जो यह आत्मा, वह ज्ञानस्वरूप है, दर्शनस्वरूप है — ऐसा जो भेद का विकल्प, पहले उस ज्ञान का अङ्ग गिनकर, सम्यग्ज्ञान का अङ्ग नहीं परन्तु व्यवहार ज्ञान का अङ्ग गिनकर...ऐसा कलश टीका में लिखा है। समझ में आया? पहले ऐसा आता है। आहाहा!

हस्तावलम्बन जानकर, है? **जिन्होंने अपना पैर रखा है- ऐसे पुरुषों को, अरे-रे! हस्तावलम्बक तुल्य कहा है;** आचार्य खेद से कहते हैं — अरे रे! उसे नौ तत्व की श्रद्धा और गुण-गुणी के भेद की बात-ऐसी बात आती है, अरे रे! परन्तु वह तो खेद का कारण है; वह आत्मा को लाभ का कारण नहीं। आहाहा! जिसे वीतराग कथित व्यवहार का विषय... आहाहा! यह हस्तावलम्बन जानकर बहुत कहा है, आहाहा! प्रवचनसार, चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में आया था — हे पंचाचार! ज्ञानाचार! विनय से पढ़ना, अक्षरों को ऐसे करने-योगदान करना-यह सब ज्ञान व्यवहाराचार! तू मेरा स्वरूप नहीं है। दर्शनाचार — नि:शंक, नि:काँक्ष — ऐसो व्यवहार सम्यक्त्व के आठ आचार, यह तू मेरा स्वरूप नहीं है। पञ्च महाव्रत और पाँच समिति, (तीन) गुप्ति — ऐसे अट्ठाईस मूलगुण, यह विकल्प-तू मेरा स्वरूप नहीं है, परन्तु मेरी पूर्णदशा नहीं है, तब तक तू है, पाँचों ही आचार है। व्यवहार के ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्य और तपाचार। आहाहा! यह जो भगवान ने व्यवहार कहा है, वहाँ अर्थ में तो ऐसा आया है कि मैं तेरे प्रसाद से जब तक पूर्ण न होऊँ (तब तक)... यह व्यवहार का कथन है। (श्रोता : वास्तव में मेरा स्वरूप नहीं है।) ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

मैं पूर्णानन्द को प्राप्त न होऊँ, तब तक तेरा ऐसा भाव होता है, इतना बस! परन्तु है,

वह बन्ध का कारण है और जो बन्ध के कारण का भाव...आहाहा! यह अनन्त... अनन्त... अनन्त...गुणों का पर्वत-गुण का गोदाम, अनन्त गुण का गोदाम प्रभु (है), जिसमें अनन्त की अनन्त का अन्त नहीं-ऐसे अनन्त गुणों का गोदाम, (आत्मा में) ऐसा कोई गुण नहीं कि व्यवहाररूप रागपने परिणमित हो — ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है, भाई! कोई वाद-विवाद से पार पड़े — ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। पहले जब तक सुनता है, तब तक इसका लक्ष्य भेद में रहता है। आहाहा!

ऐसे पुरुषों को हस्तावलम्बन तुल्य कहा है। निमित्तरूप से ज्ञान कराया है। आहाहा! **तथापि**... आहाहा! **जो पुरुष चैतन्य चमत्कारमात्र...** भगवान आत्मा चैतन्य चमत्कार... चमत्कार, इसका क्या अर्थ? आहाहा! जिसे तीन काल के समय से आकाश के प्रदेश अनन्तगुने, उनसे अनन्त गुने तो आत्मा के गुण (हैं)। आहाहा! और वह चैतन्य-चमत्कार है। ऐसा कोई अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, कोई चमत्कारी चीज है। अहाहाहा...! अरे! उसकी बात का पता नहीं पड़ता, उस वस्तु को दृष्टि नहीं करता, उसका ज्ञान नहीं करता और बाहर की बात मैं करके मर जाता है — यह व्रत किये, यह तप किया और... आहाहा! कठिन काम है। इस व्यवहार व्रत-तपरूप परिणमना — ऐसा उसमें कोई गुण नहीं है। ऐसा जो भगवान आत्मा चित्-चमत्कार वस्तु... आहाहा! जिसका विश्वास करने पर, जिसकी दृष्टि करने पर चैतन्य-चमत्कार के अनन्त गुण, पर्याय में व्यक्तरूप से उछलकर व्यक्त प्रगट होते हैं। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसा स्वरूप है, भाई! आहाहा!

जिसकी शक्तियों के संग्रह की संख्या का पार नहीं; क्षेत्र भले ही शरीरप्रमाण हो, परन्तु उसकी शक्तियों के माप का कोई माप नहीं है। कोई माप नहीं; उसका ज्ञान माप कर लेता है। आहाहा! क्या कहा यह? भगवान आत्मा, अनन्त-अनन्त शक्तियों की सीमा नहीं.... आहाहा! उनकी कोई हद नहीं। सीमा नहीं कहते है कि यह मेरा खेत इतना सीमावर्ती है। इतने (योजन में) सीमावर्ती है या २५-५० योजन में है। ऐसी इन गुणों की कोई सीमा नहीं है। आहाहा! ऐसे गुण की सीमा रहित (असीम) प्रभु; जिसे व्यवहाररूप से परिणमना... ऐसे अनन्त-अनन्त गुण, परन्तु ऐसा कोई गुण नहीं कि व्यवहार के रागरूप परिणमे-ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा!

हाँ, उसमें लिया है न भाई! ३९-४० (वीं) शक्ति, नहीं? ३९ (वीं) शक्ति में 'भाव' लिया है, यह कि षट्कारक के परिणमन से परिणमित होती विकृत अवस्था, उससे रहितपने होना-ऐसा उसमें 'भाव' और 'क्रियाशक्ति' गुण है। षटकारक के शुद्ध परिणमनरूप परिणमित होना — यह उसका गुण है-४७ शक्ति! आहा...हा! गजब काम ४७ शक्तियाँ तो... आहाहा! अरे भाई! तू ज्ञान में-लक्ष्य में तो ले! आहाहा! उस अमाप चीज का ज्ञान की पर्याय में माप ले ले। आहाहा!

श्रोता : अमाप का माप कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : तू अमाप का माप कर तो यह सम्यग्ज्ञान कहलायेगा। आहाहा! समझ में आया? मार्ग...बापू! वीतरागमार्ग, अर्थात् जिनेश्वरमार्ग, अर्थात् दिगम्बरमार्ग, अर्थात् आत्ममार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **जो पुरुष चैतन्य-चमत्कारमात्र....** यह चैतन्य-चमत्कारमात्र जिसमें राग का तो अभाव है, निमित्त का तो अभाव है, परन्तु जिसमें वर्तमान प्रगट पर्याय का भी जिसमें अभाव है।

श्रोता : चैतन्य का क्या चमत्कार है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं ही चमत्कारी है चीज ही।

श्रोता : किस प्रकार रहती है।

पूज्य गुरुदेव श्री : अल्पक्षेत्र में रहती है, फिर भी अलोक-लोक को जानती है, पर्याय। आहाहा! अल्पक्षेत्र में और अल्पकाल मैं एक समय की पर्याय होती है, फिर भी अमाप-ऐसे गुण का समुद्र प्रभु, उसे वह जानती है। जिसके क्षेत्र का माप नहीं, कहीं अन्त नहीं, उसे भी जानती है। जिससे काल की शुरुआत नहीं.... कब? कहाँ? आहाहा! उसे भी जानती है। ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, उसे जहाँ चैतन्य चमत्कार की ओर झुकाया.... आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या हो? यह तो इसने अनन्त काल में एक सैकेण्ड (भी) किया ही नहीं!

श्रोता : सुना भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा सुना नहीं। यह क्या है? यह, वह यह? मेरा नाथ अन्दर

चैतन्य-चमत्कार से भरपूर (है।) वह कोई विकार को करे, और पर का करे और पर से अपने में कुछ होवे — ऐसी वह चीज ही नहीं है। आहाहा! आहाहा!

जो पुरुष... पुरुष, अर्थात् आत्मा; पुरुष ही करते हैं — ऐसा कुछ नहीं। **जो पुरुष चैतन्य-चमत्कारमात्र...** आहाहा! जिसमें व्यवहार का परिणमन करना-ऐसा तो गुण नहीं; परन्तु जिसमें वर्तमान पर्याय है, वह उसमें (ध्रुव में) नहीं है। आहा...हा! जिस ज्ञान की पर्याय ने अमाप को माप में ले लिया है, वह पर्याय भी उसमें नहीं है। आहाहा! — ऐसा जो चैतन्य चमत्कार, आहाहा! **मात्र...** मात्र शब्द है न? चैतन्यमात्र अर्थात् कोई राग नहीं, विकल्प नहीं, पर्याय नहीं, भेद नहीं... आहाहा! **परद्रव्य-भावों से रहित (शुद्धनय के विषयभूत)...** आहाहा! जिसे ११वीं गाथा में भूतार्थ कहा; ६वीं गाथा में जिसे ज्ञायक कहा... आहाहा! **चैतन्य चमत्कारमात्र, परद्रव्य-भावों से (रहित)...** पहले तो अस्ति कहा — चैतन्य-चमत्कारमात्र वस्तु, वस्तु, वस्तु वस्तु... अब **परद्रव्यों से रहित...** नास्ति कहा — रागादि से रहित। आहाहा! **परम अर्थ को अन्तरङ्ग में...** आहाहा! ऐसा परम पदार्थ प्रभु.... जिसकी शक्ति के, गुण के संग्रह का माप नहीं है। आहाहा! यह फिर क्या है यह? वहाँ क्षेत्र का माप नहीं है। काल का माप नहीं, यहाँ गुण का माप नहीं; फिर भी क्षेत्र तो इतना है — शरीरप्रमाण क्षेत्र है। अरे! अंगुल के असंख्यातवें भाग में निगोद के अनन्त जीव; वह एक-एक जीव अनन्त-अनन्त गुण के माप से, अमाप से भरा हुआ है। आहाहा! अरे, बापू! उसे द्रव्य की श्रद्धा कब होगी? आहाहा! अंगुल के असंख्यातवें भाग में यहाँ, अनन्त जीव है यहाँ। सारे लोक में इतने भरे हैं। डुंगरी-प्याज, लहसुन की कली-एक टुकड़ा (उसमें) असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव; एक-एक जीव में अमाप-अनन्त गुण-उन सबका क्षेत्र छोटा है, परन्तु उस क्षेत्र की यहाँ जरूरत नहीं है। उसके स्वभाव के सामर्थ्य की क्या चीज है? समझ में आया? आहाहा!

ऐसे परद्रव्यभावों से रहित परम अर्थ को...परम पदार्थ ...आहाहा! चैतन्य चमत्कार त्रिकाल अनन्त गुण की अमाप वस्तु, प्रभु! आहाहा! उसे **अन्तरङ्ग में अवलोकन करते हैं...** अन्तरङ्ग में-अन्तर अवलोकन करते हैं, पर्याय में, आहाहा! ज्ञान की पर्याय उसे अवलोकन करती है। आहाहा! वह पर्याय कैसी और कितनी ताकतवाली है कि जो

अमाप गुण की शक्ति का संग्रह प्रभु... आहाहा! भाई! सम्यग्दर्शन और उसका विषय तथा उसे जाननेवाली ज्ञान की पर्याय, कोई अलौकिक चीज... अरे रे! ऐसी वह जो चीज है, उसे जो अवलोकन करती है... अवलोकन करती है, वह पर्याय है। अमाप ऐसा भगवान आत्मा, उसे जो ज्ञान की पर्याय अवलोकन करती है... (अवलोकन करनेवाली) पर्याय (है) ध्रुव, ध्रुव को कहाँ अवलोकेगा? यह पर्याय सिद्ध की। (पर्याय) अवलोकन करती है, **उसकी श्रद्धा करते हैं।** आहाहा! जो अमाप शक्ति का संग्रहालय प्रभु, अनन्त गुणों के संग्रह का आलय-स्थान, ध्रुवधाम, उसे जो अन्तर में, परसन्मुखता से छूटकर स्वसन्मुख होते हैं और तब अवलोकन करते हैं। समुद्र, बड़ा गुण का समुद्र, उसे जो ज्ञान अन्तर्मुख होकर अवलोकन करता है। आहाहा! **और उसकी जो श्रद्धा करते** हैं। समझ में आया?

अर्थं अन्तः पश्यतां — है न, **तथा उसरूप लीन होकर चारित्रभाव को प्राप्त होते हैं...** क्या कहते हैं? कि जो अन्दर ऐसी चीज है, उसका ज्ञान करके, उसकी श्रद्धा करके और उसमें लीनता हो जाती है, उसे कुछ भी व्यवहार नहीं होता। उसे व्यवहार कुछ भी जाना हुआ भी उसे नहीं होता। आहाहा! वह जाना हुआ प्रयोजवान कहा था, वह अब उसमें रहा नहीं। यह क्या कहा? कि प्रथम जो आत्मा का अनुभव-दर्शन-ज्ञान हुआ, परन्तु जहाँ अभी पूर्णता नहीं, वहाँ आगे उसे अपूर्ण शुद्धता और अशुद्धता के अंश है, उन्हें जाना हुआ प्रयोजनवान है — ऐसा कहा था - १२वीं गाथा में (कहा था।) अर्थात् उस समय की ज्ञान की पर्याय, उस प्रकार की शुद्धता का अंश है, पूर्ण नहीं; और अशुद्धता —दोनों हैं; उसे जाना हुआ प्रयोजनवान अर्थात् कि साधकजीव को उस काल में ज्ञान की पर्याय स्व को जानती है और पर को जिस प्रकार का राग और थोड़ी अशुद्धता है — उसका जानना, वह अपनी स्व-पर प्रकाशक पर्याय परिणमित होती है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है। समझ में आया? वह अब जहाँ पूर्ण हुआ, वहाँ यह रहा नहीं। समझ में आया? — यह कहना है। व्यवहार आता है, जब तक पूर्ण चारित्रवन्तलीन न हो, यथाख्यात आदि, तब तक उसे स्वभाव का आश्रय और अवलम्बन का ज्ञान-श्रद्धान होने पर भी चारित्र की लीनता पूर्ण नहीं हुई। इस कारण उसे ऐसा शुद्धता का अपूर्ण अंश और अशुद्धता का अंश- ऐसे दोनों होते हैं, उन्हें जाननेवाली ज्ञान की पर्याय उस काल में, अपने काल में (अपने)

कारण से स्व और पर को प्रकाशित करे-वैसी स्व-परप्रकाशक पर्याय होती है, इसलिए उसे जाना हुआ प्रयोजनवान कहा गया है। आहाहा! धन्नालालजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

परन्तु जहाँ ज्ञान, दर्शन और स्थिरता पूर्ण हो गये, फिर अपूर्ण शुद्धता और राग नहीं रहा; इसलिए जो जाना हुआ प्रयोजनवान था, वह वहाँ नहीं रहा। आहाहा! आहाहा! अरे! यह मार्ग तो देखो! चिमनभाई! ऐसा मार्ग, और लोग बिचारै, एकान्त है... एकान्त है...अरे, बापू! भाई! तुझे वस्तु स्वरूप...बापू! इससे उल्टा परिणाम का फल, भाई! कठोर आएंगे, भाई!! वह दूसरों से देखे नहीं जाएँ-ऐसे दुःख होंगे। आहाहा! तुझे अभी अच्छा लगता है, ऐसा मानो हम ओ हो हो.... और लोग भी पागल, सब इकट्ठे आहाहा! अद्‌भुत बात करते हैं, अच्छी बात करते हैं... व्यवहार से चाहिए और व्यवहार से होता है न! ११वीं (गाथा में) कहा न-परस्पर व्यवहार का — भेद का उपदेश करते हैं, परस्पर... यह तो अनादि का है, इससे नया क्या है ? आहाहा!

श्रोता : वहाँ व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान कहा, उसे यहाँ निकाल दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे यहाँ निकाल दिया। पूर्ण हुआ, पूर्ण हुआ; इसलिए निकाल दिया। वहाँ अपूर्ण था; दृष्टि-ज्ञान का विषय तो पूर्ण ही है, परन्तु यहाँ पर्याय में अपूर्णता और शुद्धता पूर्ण नहीं थी और अशुद्धता थी; तब उस प्रकार का ज्ञान, स्व और पर को उसी प्रकार जानता हुआ प्रगट होता था। उस प्रकार का ज्ञान, अब पूर्ण हुआ तो वहाँ रहा नहीं। आहाहाहा।

भाषा तो सादी है, बापू! भाई! तेरी बातें क्या करना, प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं है। आहा! एक-एक पर्याय में उसकी प्रभुता पसर गयी है। क्योंकि उसमें प्रभुत्व नाम का एक गुण है और वह गुण है, उसका अनन्त गुणों में रूप है। आहाहा! और अनन्त गुणों में प्रभुत्व का रूप है और उसकी पर्याय में भी प्रभुत्व की पर्याय प्रगट होती है। वह अखण्ड प्रतापित स्वतन्त्र शोभित, जिसे राग के निमित्त के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है। आहाहाहा! इस प्रकार अखण्ड प्रतापित स्वतन्त्र स्वाधीन पर्याय एक प्रभुत्व गुण की होती है, इसी प्रकार अनन्त गुणों की, प्रभुत्व गुण के कारण स्वयं का भी स्वरूप ऐसा है, इसलिए... आहाहा! स्वतन्त्रपने, स्वाधीनपने, जिसका प्रताप कोई खण्डित न कर सके-

ऐसी गुण की पर्याय का परिणमन स्वतन्त्र स्वयं से होता है। आहाहा! उसे व्यवहार से यह होता है, निमित्त से यह होता है — यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी वस्तु है।

पहले तो सुनना कठिन पड़े। आहाहा! बापू! प्रभु! तू ऐसा है न? यह तू है, उसकी बात चलती है। आहाहा! इस चैतन्य-चमत्कारमात्र प्रभु का ज्ञान-श्रद्धा हुई और फिर लीनता पूर्ण हो गयी; उसे फिर अपूर्णता — जो शुद्धता का अंश और अशुद्धता, वह नहीं है; इसलिए उसे व्यवहारनय नहीं है; इसलिए व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान भी नहीं रहा। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : उन्नीसवीं बार बात हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उन्नीसवीं बार; सत्य बात है। उन्नीसवीं बार है। उन्नीसवीं बार, उसमें हमारे चूड़ावाले छोटा भाई कहते हैं कि यह (उन्नीसवीं बार) पहली गाथा से बहुत अच्छा चलता है — ऐसा कहते हैं। उन्नीसवीं बार... छोटा भाई! वे कहते थे, अन्दर आकर कहते थे। मार्ग ऐसा, बापू! आहाहा! यह भगवान ने कहा — ऐसा है। कहीं भगवान ने किया नहीं है यह कुछ! स्वयं का किया, परन्तु पर का कुछ नहीं किया। वह तो उसकी चीज स्वतन्त्र है। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि तेरे स्वरूप की प्राप्ति के लिए तेरा गुण ऐसा है कि हमारी अपेक्षा बिना तेरा परिणमन होता है — ऐसा तेरा गुण है। आहाहा!

हम देव-शास्त्र और गुरु जो पर हैं और पर की अपेक्षा से तुझमें कुछ राग होता है — यह तेरा स्वभाव है ही नहीं। आहाहा! तब? कि उसे होता है न? कि होता है, उसे जानने की पर्याय स्व-परप्रकाशक में जानती है। आहाहा!

श्रोता : व्यवहार से प्रचार-प्रसार किया, फिर उसका फल आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रचार-प्रसार कुछ नहीं होता। यह तो पहले इतना आया कि यह आत्मा, वह ज्ञान है — ऐसा भेद आया, इतनी बात.... वह इसे अनुसरण करना नहीं; अनुसरण तो अभेद का करना है और फिर भी जब पर्याय में पूर्णता नहीं है, तब तक अपूर्ण शुद्धता और अशुद्धता का अंश साथ में है; भिन्न-भिन्न अंश है.... आहाहा! उसे जाना हुआ

प्रयोजनबान है, अर्थात् उस समय वैसा ही ज्ञान; वह राग और अशुद्धता है - उसकी अपेक्षा रखे बिना, ज्ञान की पर्याय भी स्वतन्त्र अपने से; जिसकी अखण्डता की स्वतन्त्रता से शोभायमान जिसकी पर्याय है; उसे कोई राग है, इसलिए उसका ज्ञान होता है — ऐसी भी अपेक्षा नहीं है। आहाहाहा! समझ में आया? उसकी उस समय की ज्ञान की पर्याय स्व-परप्रकाशकरूप से उस काल में, उसी प्रकार की उत्पन्न होने की स्वतन्त्रता से शोभित होती है, उसे कोई राग है, इसलिए स्व-परप्रकाशक पर्याय उत्पन्न हुई — ऐसा नहीं है। आहाहाहा! यह वस्तु तत्त्वज्ञान कोई चीज ही अलग है। आहाहा! यह तो महा गहरा पाताल का कुआँ, यह पाताल का पानी.... पार आवे ऐसा है?

श्रोता : यह अव्यवहत् हो गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : अव्यवहत्.....! आहाहा! जनडा में कहा था न? पाताल में पानी तुरन्त तैयार था। बहुत खोदा, बहुत खोदा निकला नहीं, एक चार इंच की पत्थर की वह रह गयी पाताल के और टूटने की, तो थक गये तो चले गये घर, पानी नहीं निकला। इतने में एक बारात आयी। बारात समझे न? दूल्हा; विवाह का समय दश बजे का; दश-साडे दश.... कि यहाँ कुआँ है, हम यहाँ आराम करेंगे, यहाँ नाश्ता करते हैं और लड्डू खाते हैं और बारात, यह विवाह कुछ आगे जाना होगा या साड़े दश हो गये होंगे कि यह कुआँ है, वहाँ खड़ा रखा, वहाँ ऐसे देखे न तो वहाँ पानी नहीं मिलता। उसमें एक व्यक्ति ने कहा — ऊपर बड़े पत्थर पड़े हैं, बड़े पच्चीस-पच्चीस मन के, डालो! और उसमें एक पत्थर जहाँ डाला वहाँ चार इंच टूटकर अन्दर से पानी की सीर उड़ी, ऐसे अन्दर से सीर उड़ी। वहाँ तो नीचे पानी का प्रवाह है न नीचे पाताल में जोरदार, आहाहा! (कुएँ में) पानी भरा है। इसी प्रकार आत्मा में पानी भरा है — गुण का गहरा-गहरा.... आहाहा! यह लोग नहीं कहते? यह व्यक्ति पानीवाला लड़का है। पानीवाला, अर्थात् ताकतवाला। इसी तरह भगवान अनन्त पानीवाला है। आहाहा! जिसके तल में-पाताल में पार नहीं है; जिसका पार केवली पा सकें या ज्ञानी पा सकें, वरना तर्क से प्राप्त की जा सके — ऐसी वह चीज नहीं है। आहाहा! ऐसे चैतन्य-चमत्कारमात्र का अवलोकन करते हैं। ऐसा है न? **उन्हें व्यवहारनय कुछ भी**

प्रयोजनवान नहीं है अर्थात् उन्हें व्यवहारनय का विषय ही नहीं रहता। आहाहाहा! कुछ समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई!

जहाँ सम्यग्दर्शन ज्ञान हुआ, पूर्णानन्द के नाथ का — उस दातार का दर्शन हुआ.... आहाहा! अद्बद्नाथ स्वयं प्रभु, उसकी प्रतीति और ज्ञान हुआ परन्तु उसमें लीनता पूर्ण न हो, तब तक उसे शुद्धता तथा अशुद्धता के अंश.... वह पर्याय है, वह व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है और शुद्ध का अंश और वह व्यवहार का अर्थात् व्यवहारनय जाना हुआ अर्थात् उस काल में उस ज्ञान की पर्याय की उत्पत्ति उसी प्रकार से स्व-पर को प्रकाशित करे, वैसी उत्पत्ति होती है, उसे ऐसा कहा कि व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है परन्तु जहाँ पूर्णदशा हुई, तब उसे शुद्धता, अपूर्णता और अशुद्धता थी, वह नहीं रही; पूर्ण शुद्धता हो गयी। इसीलिए वह ज्ञान भी स्व-पर को पूर्ण प्रकाशित करे - ऐसा ज्ञान हो गया। अपूर्ण को प्रकाशित करे - ऐसा जो ज्ञान था, वह वहाँ नहीं रहा। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसा मार्ग है। यह दिगम्बर धर्म.... आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो इस आत्मा की पर्याय-ज्ञान की एक समय की पर्याय, उसे छह द्रव्य जानने का उसका स्वभाव है और वह पर्याय तब मानी कहलाती है कि छह द्रव्य - उसमें अनन्त तीर्थंकर, सिद्ध आये, निगोद के जीव आये, साक्षात् वर्तमान महाविदेह में विराजनेवाले, वे द्रव्य उसमें आये - ऐसे अनन्त द्रव्यों को एक समय की पर्याय, भले ही श्रुतज्ञान की हो, वह जानने की ताकत रखती है। इसलिए जिसने एक समय की पर्याय की प्रतीति की, उसने छह द्रव्यों को माना है परन्तु यह तो अभी व्यवहार है। आहाहा! एक समय में अनन्त तीर्थंकर, सिद्धों को माना-जाना, (वह) पर्याय, उसका स्वभाव ही ऐसा है परन्तु एक पर्याय को जब तक माने, तब तक तो अभी व्यवहारनय है उसका। आहाहा! वह छूटकर द्रव्य के यह जहाँ त्रिकाल जिसमें एक ऐसी पर्याय नहीं, अनन्त-अनन्त एक गुण का संग्रह पड़ा है - ऐसे अनन्तगुणों का प्रभु.... आहाहा! अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त... शक्तियाँ अर्थात् संख्या, उसकी एक-एक शक्ति प्रभुत्व गुण से भरपूर है। आहाहा! और उसकी पर्याय भी प्रभुत्वगुण की पर्याय है। उसकी प्रभुत्वगुण की पर्याय को कोई पर खण्डित कर सके या पर की अपेक्षा से वह प्रभुत्वगुण

की पर्याय अथवा दूसरे गुणों में भी प्रभुत्वगुण का रूप है; दूसरे गुणों की पर्याय में भी प्रभुत्व का रूप है परन्तु दूसरे गुण की पर्याय को भी पर की अपेक्षा हो तब तो पर्याय उत्पन्न हो और पर्याय रहे और पर्याय बढ़े – ऐसा नहीं है। आहाहा! मानो या न मानो, जगत चाहे जो कहे.... समझ में आया?

ऐसा वस्तु का स्वरूप! अद्‌भुत बात, उस बेचारे जापानवाले ने लिखा है न कि एक तो ऐसा जैनधर्म.... अनुभूतिस्वरूप जैनधर्म और निर्वाणरूप आत्मा, अर्थात् हम मुक्तस्वरूप आत्मा कहते हैं, उसने निर्वाण कहा। आत्मा स्वयं मुक्तस्वरूप ही है। स्वभाव, शक्तिस्वरूप मुक्तस्वरूप ही है, उसने निर्वाण लिया (कहा) बेचारे ने; उसने एक यह कहा – अभी यह धर्म बनियों के हाथ आया और बनिये व्यापार के व्यवसाय में घुस गये हैं। ऐ हिम्मतभाई! लोहे में.... आहाहा! यहाँ उसने लिखा है (जापानवाले ने)। बनिया-व्यापारी उसमें – व्यवसाय में घुस गये हैं, उसमें यह क्या चीज है, उसका निर्णय करने के लिए निवृत्ति भी नहीं लेते हैं। आहाहा! एक तो व्यापार के धन्धे में घुस गये, दूसरे फिर स्त्री, पुत्र को, परिवार को सम्हालने में, प्रसन्न रखने में और उनके साथ यह.... यह.... यह.... प्रसन्न रखने और अच्छा करने में क्रीड़ा करनी और.... अररररर......! व्यापार के व्यवसाय उपरान्त यह, यह तो सबको होता है... यह जैनधर्म का मर्म है, उसका निर्णय करने के लिए बनिये, व्यापार के व्यवसायवाले निवृत्त नहीं हैं और भाई ने तो लिखा है – जगमोहनलालजी ने – अरे....! यह लोग ऐसे जापान के अन्य मिथ्यादृष्टि, उस अनार्य देश में रहनेवाले, ऐसे विज्ञान की शोध करते-करते ऐसा जिन्होंने जैनधर्म का रूप निकाला; हम जैन लोग प्रमादी हैं – ऐसा लिखा है। बेचारे जगमोहनलालजी, है? है और ऐसा पढ़ा, बताया था। अपन ने रात्रि में पढ़ा था न, मोहनलालजी! रात्रि में दो-तीन दिन पहले।

श्रोता : प्रमादी.....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमादी है। अरे, अपन बनिये अर्थात् जैन; उन लोगों ने ऐसा शोधा और निकाला कि जैन का स्वरूप ऐसा है और तुम बनिये-व्यापारी जैन में जन्मे हुए को कुछ निर्णय का ठिकाना नहीं है। आहाहा!

श्रोता : बनिये ऐसे ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब उसके लिए निर्धार करना चाहिए। निर्णय करो — ऐसा लिखा। फिर अब, तैयार हो, प्रमाद को छोड़ो बाहर के व्यवसाय में रुकना छोड़ दो। आहाहा! भाई नहीं आये न? हसमुख नहीं आये न, दोपहर में आते हैं। दोपहर में आते हैं हसमुख। हमारे गाँधी हैं हसमुख बोटाद का, मात्र बयालीस वर्ष की उम्र, दो-तीन लाख की आमदनी दुकान में, लोहे की, मुम्बई में अपने हाथ से दुकान की, वह गाँधी तुम्हारे में से वह हसमुख... हसमुख, हसमुख कान्तिलाल, आहाहा! तीन-तीन लाख की आमदनी स्वयं ने की, बयालीस वर्ष की उम्र। एक लड़का है दस या ग्यारह वर्ष का, एक लड़की है। भाईयों को कहता है - भाई! अब मुझे कोई व्यापार नहीं करना है। भाई! हम तीन भाई हैं, मेरा तीसरा हिस्सा आता है न, मुझे चौथाई भाग दो परन्तु अब मैं दुकान पर नहीं आऊँगा। आता है बहुत बार, दोपहर में आता है। आज आवे तो आवे, कल नहीं आये थे। नहीं तो शनिवार-रविवार को हमेशा।

श्रोता : यह सब आपका प्रताप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे एकदम ऐसा हो गया है कि आहाहा! अपने को करने का तो रह जाता है और यह क्या? लड़कों ने पाँच लाख दिये, चिमनभाई! दो भाईयों को दो-तीन लाख की वार्षिक आमदनी। पैसा बहुत होगा, भाई ने पाँच लाख दिया। भाई! हम पाँच लाख देंगे। बस, कुछ नहीं बोला। बस, मुझे काफी है। पाँच लाख का पाँच हजार रुपये महीने ब्याज आयेगा। बस, मैं खर्च करूँगा। मैं इन शास्त्रों में, लड़कों की दवा में, गरीब व्यक्ति आवे तो; उसने देखा था न गरीबपना स्वयं, इसलिए गरीबपने को देखकर दया आ जाती है और कहता है — दो-पाँच रुपया ले जा भाई, ले जा! महीने में पाँच हजार रुपये का ब्याज आता है, उसे इस प्रकार खर्च कर देता है, पाँच लाख पड़े हैं। आता है दोपहर में बारम्बार। शनि-रवि का आता है। एकान्तरे आता है, ४२ वर्ष में सन्तोष किया और यहाँ तो तुम्हारे करोड़ों रुपये और पचास-पचास लाख हों, दश लाख हों, बीस लाख हों तो भी सब्र (सन्तोष) नहीं। कहीं ऐसा दृष्टान्त बैठाया,... गाँधी कुटुम्ब में दूसरे पैसेवाले बहुत हैं, हीरालाल और चम्पकलाल और अमुकभाई अपने तीन भाई। किया स्वयं ने दुकान का, फिर दो भाई तो बाद में आये, भले ही आये बापू! भाई, यह सब तेरा है। मुझे तीसरा भाग

आता है, न, मुझे चौथा दो। वस्तु हो उसमें से मुझे चौथा दो परन्तु अब मैं दुकान पर बिलकुल आनेवाला नहीं हूँ। दुकान मेरे लिए बन्द है। निवृत्ति करके और वहाँ घर में वाँचन बस — शास्त्र का वाँचन। वाँचन सुबह शुरु होता है, वहाँ आता है। रमेश के भजन, यह तो घाटकोपरवाले धातकीखण्ड याद आता है। वह घाटकोपर, घाटकोपर है न ? रमेश सबेरे से बैठता है।

'गुरुजी म्हारा चेतन ने मने समझाओ' ऐसा करके शुरु करता है। गुरु मेरे चेतन को समझाओ — यह पद शुरु करे पूरे दिन। यह कुछ लेना-देना, व्यापार-धन्धा कुछ नहीं। अरे बापू ! करने योग्य तो यह है। अरे ! जाना कहाँ है भाई ! यह सब संयोग छूट जायेंगे, बापू ! ये कहाँ तेरे हैं ? आहाहा ! प्रभु ! राग का संयोगी भाव भी तेरा नहीं है तो यह चीज तेरी कहाँ से आयी ? तू कहाँ रुक गया, किसे सम्हालने ? आहाहा ! जिसे सम्हालना है, उसे तो सम्हालता नहीं और जिसे सम्हाल नहीं सकता, उसे सम्हालने में रुक गया है और इसमें सम्हाल सकता है, वहाँ आता नहीं। आहाहा ! यहाँ कहते हैं, जहाँ आगे भगवान आत्मा पूर्ण चैतन्य चमत्कार का जहाँ ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ और चारित्र की पूर्णता जहाँ हो गयी, फिर अपूर्णता है नहीं; इसलिए अपूर्णता को जानने से ज्ञान को व्यवहार कहने में आता था; है तो वह अपनी स्व-पर प्रकाशक पर्याय, परन्तु पर की अपेक्षा से उसे व्यवहार से जानता है — ऐसा कहा जाता था; यह पूर्णदशा जहाँ हुई, तब वह व्यवहार रहा नहीं। इसलिए उसे जाना हुआ प्रयोजनवान नहीं है। आहाहा ! अकेला आनन्द का अनुभव, केवलज्ञान !

विशेष कहा जायेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)